रोटी का राग

रचयिता

श्रीमन्नारायण अग्रवाल एम० ए०

प्रस्तावना लेखक

आचार्य काका कालेलकर

सम्पादक

श्री मैथिलीशरण गुप्त

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,

सस्ता साहित्य मण्डल, (सोल एजेन्सी विभाग) दिल्ली, द्वारा प्रकाशित।

पहली बार } मूल्य बारह आना { जून १९३७

मुद्रक,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
दिल्ली

पूज्य माता-पिता

के

कर-कमलों में

बापू के आशीर्वाद

भाई श्रीमन्,

'नये युग का राग' में पढ़ गया हूँ। कवितायें मुझको अच्छी लगी हैं। हेतु स्पष्ट और निर्मल है।.....

सेगांव *बापू के आशीर्वाद*

'नये युग का राग'

सरल, संस्कारी और सहृदय, इन्हीं शब्दों में श्रीमन्नारायणजी की कविता का वर्णन हो सकता है। कवियों के सामान्य काव्य-विहार का पूरा-पूरा अनुभव लेकर और आजकल के मनुष्य-जीवन की विषमता देखकर हमारे कवि को शंका हुई है कि क्या आजकल के कविगण जीवन से विमुख तो नहीं हुए हैं? वेदकालीन और उपनिषद्कालीन कवियों ने जीवन का पूरा पूरा अनुभव लेकर उसके ऊपर अपना प्रतिभाशाली चिन्तन चलाकर विश्व का रहस्य ढूँढ निकाला। अगर वे जीवन से भाग जाते तो गगन-विहार और कल्पना-तरंग में ही उन्हें अपनी वाणी समाप्त करनी पड़ती। जो जीवन-वीर है वही रहस्य की बातें कर सकता है। जिसनें विश्वात्मैक्य का अनुभव करके प्राणीमात्र का दुःख अपने हृदय से सहन किया है और जो हृदय विकास होने के कारण अपने शरीर को भूल गया है वही अनन्त का गायन कर सकता है। जिन लोगों नें अपनी क्षुद्र वासनायें छोड़ी नहीं हैं, राग और द्वेष से जो लोग पूरे पूरे भरे हैं, उनके मुँह में रहस्य की बातें और अनन्त का गान पवित्र वस्तु की दिल्लगी-सी करना प्रतीत होता है। ग़रीब के कष्टों से लाभ उठाकर जो लोग घी दूध उड़ाते हैं और निश्चिन्त आजीविका के कारण शराबखोरों-जैसा गगन-विहार करते हैं और इस दुनिया को भूलकर काव्य-सृष्टि की रचना करते हैं वे न तो मनुष्य जाति की सेवा करते हैं, न रस-सृष्टि का निर्माण करते हैं। जीवन-वीरों की वाणी जीवन के इन विदूषकों के मुँह में हंसीपात्र बन जाती

हैं। इन जीवन-विदूषकों ने अपना एक पंथ चलाकर ज़मानों तक "अहो रूपं अहोध्वनिः" चलाया। अब तो दुनिया इस रहस्य-विहीन रहस्यवाद से ऊब गई है।

प्राचीन काल से बहुत से कविलोग ऐश्वर्य के आश्रित बनकर रहे हैं। युद्ध-कुशल वीरों की और उनकी प्रणय चेष्टाओं की, राजाओं के दिग्विजय की और उनके दानशौर्य की, धर्मवीरों के त्याग की और उनके माहात्म्य की कवितायें गा-गा कर कवियों ने अपने जीवन को और अपनी वाणी को कृतार्थ समझा। लेकिन वे तो आश्रित के आश्रित ही रहे।

अब वह ज़माना खत्म हो चुका है। अब कवियों ने भी देख लिया है कि अपना आश्रय-स्थान अब बदलना होगा। राजाश्रय छोड़कर लोकाश्रय पाने के दिन आगये हैं। अब कवि भी अपने-अपने राष्ट्र का और अपनी जाति का गायन गाने लगे हैं। लेकिन जिनके पास सच्चा हृदय है, पीड़ित जनता का दुःख असह्य होकर जो लोग करुणा-मूर्ति बन गये हैं, वे लोग अब वास्तविक को ही गाना पसन्द करते हैं। जो आदमी भूख से मर रहा है उसके लिए रोटी सत्य और बाक़ी सब कुछ मिथ्या दीख पड़ता है। रोटी कोटचावधि पीड़ित और दलित मनुष्य जाति की प्रतिनिधि है। उसका राग गाकर कवि राजाश्रय या लोकाश्रय नहीं ढूँढ़ता है, किन्तु राजाओं का और लोकसमुदाय का हृदय जागृत करना चाहता है। इसलिए वह कहता है,

"साधारण जीवन के सुख दुख,
गाऊँगा कवि-भाषा त्याग,
सम्पति-विद्याहीन जनों का,
करुणामय रोटी का राग"

धनी लोगों से गरीबों का जो पीड़न होता है, हरिजनों का सवर्णों के द्वारा जो अपमान और तिरस्कार होता है, वह देखकर कवि का चित्त जल उठता है और इस उद्वेग के कारण पुराने वैरागियों के समान वह जीवन को छोड़कर जंगल में भटकना और मनुष्य समाज को भूल जाना और पानी और पवन पर ज़िन्दगी बसर करना पसन्द नहीं करता—

"विस्मृति के सागर में बहना,
हम अति तुच्छ समझते"

कहकर कवि अपना जीवन तत्त्वज्ञान ज़ाहिर करता है:—

कंटकमय जीवन-पथ चलते,
पड़े पदों में छाले।
इन काँटों की पीर जगाने,
को खाते हम रोटी।
पाकर जीवन दान उसीमें,
हो जाते मतवाले!

जो किसान तीनों ऋतुओं में मेहनत मजूरी करके सब दुनिया को खिलाते हैं उन्हींके घरों में पेटभर कर खाने को रोटी नहीं मिलती है। यह दैव-दुर्विलास देखकर किस आदमी की श्रद्धा विचलित न होगी।

तोभी हमारे कवि नें कहीं भी किसी वर्ग का द्वेष नहीं सिखाया है। किसी के प्रति अनुदारता का उपदेश नहीं किया है। किसान की हालत कितनी बुरी है वह तो उसने अपने खून की आँखों से व्यक्त किया है। अछूतों के हृदय की पीडा जलते हुए शब्दों में व्यक्त की है। तो भी इतना करते हुए भारत निवासियों की शान्ति उसकी कविता में दीख पड़ती है।

हम काले हैं तो रहने दो !
कड़ी धूप में वस्त्रहीन ही,
कठिन परिश्रम करते रहते
फिर भी क्या गोरे ही होंगे,
जो असभ्य कहते, कहने दो,
हम काले हैं तो रहने दो।"

"मत छूना हम तो अछूत हैं," वाली कविता में क्षमापरायण उदारहृदयी दलित मनुष्यजाति के हृदय का उद्वेग भरा हुआ है। "गरम धूल में पैर झुलसते" वाली कविता के वातावरण का कई दफा मैंने अनुभव किया है। इसलिए उसका असर मेरे मनपर बहुत हुआ। 'क्या भूखे हो मेरे लाल" वाली कविता में तो करुण रस मूर्तिमंत होकर जमा हुआ है। और 'अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार' में निराशा प्रत्यक्ष खड़ी होती है।

हमारे सब कवि, साहित्यकार कलाकारों को अब प्रणयगान और प्रकृतिगान छोड़कर और हाला, प्याला, मधुबाला की बातें कम से कम स्थगित कर सेवा में लग जाना चाहिये। श्रीमन्नारायणजी नये युग का यह नया सन्देशा सुनाने में सन्तोष न मानकर स्वयं सेवा-क्षेत्र में कूद पड़े हैं। इसीलिये इनकी कविता का मूल्य बहुत कुछ बढ़ा है। उनका सेवा-क्षेत्र जैसा बढ़ेगा वैसी उनकी अनुभूति भी बढ़ेगी और उनकी कविता में भारत का हृदय अधिकाधिक उत्कटता से व्यक्त होगा, ऐसी आशा हम अवश्य कर सकते हैं। उनकी शैली इतनी सरल और धारावाही है कि उनकी कविता शिष्टजन और सामान्यजन दोनों को समान रूप से रुचिकर होगी।

वर्धा

—काका कालेलकर

सम्पादकीय

—०—

श्री श्रीमन्नारायण जी का 'रोटी का राग' हम भूखों-टूटों को रुचेगा, इसका कहना ही क्या ? सुना है, इसके पहले आप अंग्रेज़ी में ही लिखा करते थे। हिन्दी में आपका यह पहला ही प्रयास है।

बापू के शब्दों में आप का 'हेतु स्पष्ट और निर्मल' है। छायावाद और रहस्यवाद के नाम से होने वाली रचनाओं पर आपका क्षोभ भी स्वाभाविक है, यद्यपि उसके बिना भी आपका काम चल सकता था। अन्ततः रोटी ही जीवन नहीं, भले ही वह जीवन के लिये अनिवार्य हो। रोटी के राग में लहरों का गान भी सम्मिलित हो ही गया है। जो हो, हमें नये कवि का कृतज्ञ ही होना चाहिये जिनका हृदय हमारी जठराग्नि से पिघल उठा है।

मैं उनके भविष्य की अधिकाधिक सफलता की आशा रखता हूँ।

—मैथिलीशरण

मेरे भी दो शब्द

'फाउन्टेन ऑफ़ लाइफ' नामक मेरी पहली कृति अंग्रेज़ी में ही प्रकाशित हुई। कविवर रवीन्द्रनाथ ने प्रशंसा का एक पत्र भेजा और प्रोफेसर राधाकृष्ण ने प्रस्तावना लिखी। इन महापुरुषों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन मेरे लिए बड़ी बात थी। किन्तु योरप जाकर मेरी आंख खुल गईं। अपने हृदयोद्गारों को मातृभाषा में न लिखकर, एक विदेशी भाषा द्वारा व्यक्त करना कितना अस्वाभाविक और निन्दनीय था, यह मैं भलीभांति समझ सका।

'रोटी का राग' मेरी हिन्दी कविताओं का पहला संग्रह है। पूज्य बापूजी, कविवर मैथिलीशरण जी और श्रद्धेय काकासाहेब का आशीर्वाद पाना मेरे लिये सचमुच हर्ष और गौरव की बात है। पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी से भी मुझ को काफी प्रेरणा मिली है जिसके लिये मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ।

मैं भी पहले कुछ 'छायावादी'-सा था। किन्तु दरिद्रनारायण के दर्शन से मेरा स्वप्न टूट गया, हृदय सिहर उठा, और 'रोटी का राग' ध्वनित होने लगा। मैं मानता हूँ कि 'रोटी जीवन नहीं है' और शायद उसका राग अलापना कविता का अपमान करना है, किन्तु एक भूखे देश की अनन्त वेदना को देखकर मैं कैसे चुप रहूँ? और भावों का गला घोटना कविता का अपमान करना न होगा?

वर्धा १-५-३७

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

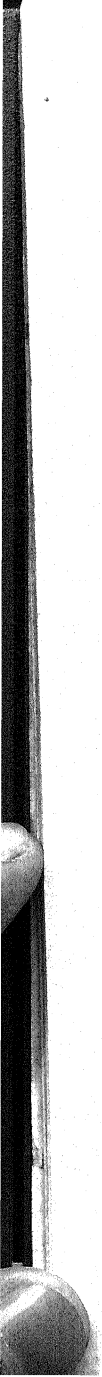

विषय सूची

१. क्या होगा गाकर 'अनन्त' का	...	३
२. नहीं मिला मेरा प्रियतम, कवि !	...	५
३. रूखी रोटी या रहस गान !	....	७
४. हम तो रोटी के मतवाले !	...	९
५. प्रिय ! अनन्त की झलक कहाँ हैं ?	...	१०
६. कवि ! पागल तुम मधुशाला में,	...	१२
७. रहसवाद को हम क्या समझें ?	...	१३
८. खूब बरसलो तुम भी आज !	...	१४
९. छाया है कैसा वसन्त !	...	१६
१०. मानव जीवन मुझको प्यारा !	...	१८
११. कहाँ सुनूँ रोटी का राग ?	...	२०
१२. अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !	...	२२
१३. मेरा प्रियतम नहीं मिलेगा,	...	२४
१४. कड़ी धूप में हम क्या गावें ?	...	२५
१५. ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !	...	२७
१६. लू, तू भी अब मन की करले !	...	२९
१७. है कृषकों की कैसी शान !	...	३१
१८. कितनी मीठी रूखी रोटी !	...	३३
१९. आज हमारी वर्षगाँठ है !	...	३५
२०. गर्म धूल में पैर झुलसते !	...	३६
२१. हम काले हैं तो रहने दो !	...	३८
२२. बन्धु आज मिल खेलें होली;	...	४०

२३. मत छूना, हम तो अछूत हैं ! ... ४२
२४. कलाकार ! सौन्दर्य कहाँ है ? ... ४४
२५. क्या भूखे हो मेरे लाल ? ... ४५
२६. चाह नहीं मुझको सुनने की, ... ४७
२७. होगा कब स्वातन्त्र्य प्रभात ? ... ५१
२८. उठो, उठो, भारत के लाल ! ... ५३
२९. आओ गावें भारत गान ! ... ५५
३०. जागो मेरी भारत माता ! ... ५७
३१. हमको तो स्वातंत्र्य चाहिए ! ... ५८
३२. स्वागत ! स्वागत भगिनि भ्रातवर ! ... ६०
३३. जय ! जय ! जय ! सेगाँव सन्त ! ... ६३
३४. जीवन का यह अनुपम बाग ! ... ६५
३५. प्रात काल से बैठा हूँ मैं, ... ६६
३६. सागर लहरी तू झरझर, ... ६७
३७. उषा-काल के प्रमुदित गान ! ... ६९
३८. अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल ... ७०
३९. आँसू की मेरी प्रिय माला ! ... ७१
४०. क्यों गाऊँ ईश्वर की महिमा ? ... ७३
४१. दुख-सागर के निर्गम तट पर, ... ७५
४२. दुख-सागर में, ... ७६
४३. सन्ध्या का शान्त, अश्रुमय हास ! ... ७८

रोटी का राग

: १ :

क्या होगा गाकर 'अनन्त' का
नीरव और 'मदिर' संगीत ?
मलयानिल के उच्छ्वासों का
मर्मर, निर्झर–झरझर गीत ?

कनक रश्मियों के गौरव से
क्या होगा दुखियों का त्राण;
रूखी रोटी ही में जिनको
है यथार्थ जीवन का प्राण ?

होगा क्या बनवाकर कविते,
तुहिन बिन्दु की निर्मल माल ?
विस्मृति के असीम सागर में
फैलाकर स्वप्नों का जाल ?

कबतक सुनता रहूँ बन्धु मैं,
मतवाले अलि की गुञ्जार ?
क्यों 'पागल' बनकर मैं घूमूं
भूल सकल मानव संसार ?

निष्फल है निर्मम अतीत का
छायायुत, रहस्यमय गान !
हंसी मात्र है उस 'अनन्त' की
सुखमय, मन्द, मधुर मुस्कान !

साधारण जीवन के सुख-दुख
गाऊँगा आडम्बर त्याग,
सम्पति विद्याहीन जनों का
करुणामय रोटी का राग !

: २ :

नहीं मिला मेरा प्रियतम, कवि !
नभ के दिव्य सितारों में,
देखा नहीं कभी उस मुख को,
मुक्ता के इन हारों में !

ढूँढ़ा हरित, सौम्य उपवन की,
सुन्दर, पुलकित कलियों में
ऊषा के शीतल पत्तों पर,
तुहिन–बिन्दु की 'फलियों' में !

तप्त कपोलों पर आँसू की,
बूँदें भी देखीं गिरती,
लोल लहरियाँ भी सरिता की,
जिनमें ताराएँ तिरती ।

श्रावण की वर्षा का गौरव,
भली भांति मैंने गाया,
किन्तु कहीं भी उस स्वरूप का,
दर्शन, ज्ञान नहीं पाया।

गया अन्त में एक खेत पर,
जहाँ कृषक करता था श्रम,
ज्योंही देखे बिन्दु भाल पर,
दूर हुआ मेरा सब भ्रम,

स्वेदकणों में प्रियतम की, कवि,
मुझको सुखमय झलक मिली,
इस रहस्य की प्रखर ज्योति से,
मेरी जीवन-कली खिली!

: ३ :

रूखी रोटी या रहस गान !

देखूँ अरुण उषा की लाली,
या तन के मुरझाये प्राण ?

निज पुत्रों की करुण दशा पर
अश्रु बहाऊँ, या नित गाऊँ,
कुसुमाकर की कीर्ति महान्,

शीतकाल के क्रुद्ध अनिल से
ढाकूँ अपना वस्त्रहीन तन,
या देखूँ कवि के 'अनन्त' की,
गुप्त, मदिर, मंजुल, मुस्कान ?

उड़ूँ कल्पना के पंखों से
स्वप्नलोक में कवियों के
या सीचूँ इस कठिन भूमि के
अपने नन्हें पौधे म्लान ?

खेती ही है मेरी सम्पति,
श्रमकण ही हैं मेरे मोती,
रहूँ बाल बच्चों में अपने,
या 'अनन्त' में करूँ प्रयाण ?

रूखी रोटी या रहस गान ?
देखूँ अरुण उषा की लाली,
या तन के मुरझाये प्राण !

: ४ :

हम तो रोटी के मतवाले !

नहीं चाह मदिरा की साक़ी,
क्या होंगे यह प्याले ?

सुरापान कर जीवन के दुख
नहीं भूलना हमको,
हम तो दुख-जीवन के प्रेमी,
गावें राग निराले !

विस्मृति के सागर में बहना,
हम अति तुच्छ समझते,
कंटकमय जीवन-पथ चलते,
पड़े पदों में छाले,

इन काँटों की पीर जगाने,
को खाते हम रोटी
पाकर जीवन–दान उसीमें,
हो जाते मतवाले !

: ५ :

प्रिय ! अनन्त की झलक कहाँ हैं ?

कवि के नित कल्पित सपनों में
'छाया' युत रहस्य-विपिनों में ?
प्रकृति रूप की मनहर छवि के
रंग बिरंगे मृदु सुमनों में ?

चन्द्रमुखी निशि की अलकों में,
अरुण उषा के शुचि पलकों में ?
निर्मल सरि के वक्षस्थल पर,
चन्द्र सितारों की झलकों में ?

चलो चलें सुख-शान्ति जहाँ है,
प्रिय ! अनन्त की झलक कहाँ है ?

दुखी जनों के तप्त उरों में,
उजड़े, आभाहीन घरों में,
निर्धनता के तीक्ष्ण, कोपमय,
हृदय रहित, पाषाण शरों में।

कृषि, बैलों औ काठ हलों में,
खेतों के सब नाज फलों में,
मिल-मज़दूरों का शोणित रस
पीने वाली कठिन कलों में,

चलो चलें दुख-क्रान्ति जहाँ है,
प्रिय ! अनन्त की झलक वहाँ है !

: ६ :

कवि ! पागल तुम मधुशाला में,
मैं पागल तव पागलपन पर !

मतवाले हो मधुशाला की,
मस्तानी मदिरा में !
ध्यान नहीं जाता किंचित भी,
दुखियों के क्रन्दन पर !

कवियों का मानस तो कोमल,
द्रवीभूत होता है,
किन्तु तुम्हारे उर में जगती
दया नहीं 'कवि' पलभर !

सुरापान तो तुम्हें सुहाता,
चिर जीवो मतवाले,
हम तो मस्त इसी रोटी में,
श्रम मिस रक्त बहाकर !

: ७ :

रहसवाद को हम क्या समझें ?

पढ़ना हमने कभी न जाना,
हमने तो काला अक्षर, कवि,
भैंस वराबर ही था जाना,
क्या 'अनन्त', उसका अकार तक,
हमने नहीं कभी पहिचाना,
मधुबाला से फिर क्यों उलझें ?
रहसवाद को हम क्या समझें ?

हमको तो दुख ही है पाना,
कड़ी भूमि में बैल जोतकर
खुद मिहनत कर हल चलवाना
कवि ! पंखों से उड़ 'अतीत' की,
छाया को तुमने ही जाना !
रोटी से तो पहले सुलझें,
रहसवाद को तब हम समझें !

: ८ :

खूब बरसलो तुम भी आज !
यह आंखें तो, सदा बरसतीं,
तुम भी खूब बरसलो आज !

इस छोटी सी सड़ी झोंपड़ी,
में जलधर ! क्या पाओगे ?
सभी ओर तुम टपक-टपक कर
जल ही व्यर्थ गँवाओगे !
तुम बरसो, मैं भी बैठा हूँ,
होगा नहीं किसीका काज,
खूब बरसलो तुम भी आज !

लूट लिया सब दरिद्रता ने,
गया लाल भी पिछले साल,
रखता है क्या कोई आशा,
अब यह फूटा हुआ कपाल ?

कौन नये अंकुर उपजाते,
आये हो जो सजकर साज ?

शान्त रात्रि के इस तम में क्या
तुम्हें पड़ी थी आने की,
दिनभर श्रम कर मैं सोया था,
क्या यह घड़ी जगाने की ?
सुनने आये हो कि सुनानें,
मेरा अपना 'टप–टप' बाज ?

: ९ :

छाया है कैसा वसन्त !

इसकी मञ्जु, मनोहर छवि में,
नव पत्तों के मधुमय यौवन,
औ पुष्पों के गन्ध–विभव में,
कवि पायँगे झलक रहसमय ।
देखेंगे प्रियतम अनन्त !

शीतल, मन्द, सुगन्ध, पवन का,
स्वागत करतीं कली किलककर ।
मदिर राग इन मस्त सुमन का,
दूर दूर लेकर मलयानिल
रञ्जित करता है दिगन्त !

कोयल की मतवाली ध्वनि से
प्रेम झलकता कवि के उर में,
मत्त भ्रमर के कल गुञ्जन से,
विरह उमड़ता नारि-हृदय में ।
सुरति-शब्द सुनते सुसन्त !

किन्तु प्रकृति की सुन्दरता को,
रही मिटा यह सड़ी झोपड़ी;
शुचि वसन्त की गुरु गरिमा को,
रहा कलंकित कर मम जीवन ।
कवि ! दोनों का करो अन्त,
फिर देखो सुन्दर वसन्त !

: १० :

मानव जीवन मुझको प्यारा!
सुख दुख की तरल तरंगों का,
क्रीड़ामय दर्शन न्यारा!

मैं आनन्द-पुष्प क्यों खोजूँ,
देवों के शुचि मन्दिर में?
स्वर्ग-शांति का वैभव क्यों मैं,
देखूँ नीले अम्बर में?

मोक्ष हेतु मैं क्यों फिरता हूँ,
त्याग सकल मानव संसार?
तीर्थों में साधू बनकर क्यों,
ढूँढूँ निर्गुण ज्योति अपार?

पाया है मैंने अनन्त को,
शिशु के हास-विलासों में,
देखा है दैवी प्रताप को,
आहभरे निश्वासों में,

निज कुटुम्ब औ मित्रों के घर,
प्रेम-पूर्ण आनन्द मिला,
मनुज-प्रीति की मंजु लता में,
मेरा जीवन-पुष्प खिला !

: ११ :

कहाँ सुनूँ रोटी का राग ?

मन्दिर या गिरजे के घंटों,
की अघनाशक टन् टन् टन् में ?
सोने चाँदी के सिक्कों की,
हृदयहारिणी खन् खन् खन् में ?

देश-देश के कुशल गवैयों
के मन-मोहक मधुर स्वरों में ?
सभी भांति के बाजों की ध्वनि,
या तारों की झन् झन् झन् में ?

नाजभरी गाड़ी की चूँ चूँ,
चरखे की भीनी भन् भन् में,
ग्राम्य झोपड़ी म लुहार के,
क्रुद्ध हथौड़े की टन् टन् में,

नदी किनारे पत्थर पर ही
धोबी के अति ध्वनिमय श्रम में,
ग्रामवधू की शिला-सहेली
आटा चक्की की घन् घन् में—

जीवन का रसपूर्ण विहाग !
यहां सुनो रोटी का राग !

: १२ :

अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !

रात अंधेरी
शीत घनेरा,
निर्धनता ने डाला डेरा,
वस्त्रहीन तन
थर-थर कांपे,
दुर्बल हूँ मैं सभी प्रकार !
अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !

टूटी फूटी
कुटिया मेरी
नागिन-सी यह निशा अंधेरी,
अन्ध बधिर विधि
कब सुनता है,
हम दीनों की हाय पुकार !
अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !

अनिल उपल जल
तीनों मिलकर
टूट पड़े इस फूटे घर पर,
निठुर ठिठुर कर
स्वयं प्रकृति भी,
सिहर रही है बारंबार !
अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !

रही बुभुक्षा
जो चिर चंडी
पड़ी आज तो वह भी ठण्डी
आज दग्ध कर—
के भी मुझको
देव, करोगे तुम उपकार !
अग्नि तुम्हीं हो प्राणाधार !

: १३ :

मेरा प्रियतम नहीं मिलेगा,
धन, सम्पति के वैभव में,
नहीं मिलेगी उसकी सुषमा,
वीरों के बल–गौरव में,
मन्दिर के गर्भागारों में,
योगी के हठयोगों में,
हास विनोदों के विलास में,
भूरि–भूरि भव भोगों में !

जहाँ क्षुधा नित अश्रु बहाती,
दुःख-नदी के निर्जल तीर,
जहाँ रंक रोते गाते हैं,
इस जीवन की दारुण पीर,
पाओगे तुम उस प्रिय मुख की,
मन्द, मधुर, मुस्कान वहीं,
दैवी स्वर के मंजु गान की,
अति पावन मृदु तान वहीं !

: १४ :

कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

गोपि-हृदय में कृष्ण-विरह का
अनुपम, क्रीड़ामय संगीत ?
कामदेव के प्रेम-बाण का
उष्ण दाह या कम्पित शीत ?
या श्रमकण मिस, रक्त बहावें ?
कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

क्या गावें हम यहाँ बैठकर
कनक-रश्मियों का सौन्दर्य ?
रवि की अनल-रूप वर्षा का
कल्पित, कवितामय ऐश्वर्य ?
या निज क्रन्दन करुण सुनावें,
कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

तप, वर्षा, हिम में श्रम कर कर
सुखा रहे हैं सदा शरीर,
तौ भी निर्धनता ने घेरा
कब तक कहो, धरें हम धीर ?
यह रहस्य कवि ही बतलावें,
कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

: १५ :

ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पटा फूस से
दर कच्चा है
टूटा फूटा
सब अच्छा है
नहीं चोर का कुछ भी डर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

नहीं सुनहरी
चमक दमक है,
बस गोवर ही
विमल कनक है,
इस पर ही जीवन निर्भर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

गंगा यमुना—
यहाँ कहाँ हैं,
वे तो बहतीं
धनी जहाँ हैं,
मेरा तीर्थ यही निर्झर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पुत्र–जन्म पर
गान नहीं है,
हम कृषकों की
शान यहीं है,
शीत अनिल का ही शुचि स्वर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

: १६ :

लू, तू भी अब मनकी करले !

वृष्टि, शीत ने तो दिल भरके,
सहवाये दुख, कष्ट महान,
नग्न वदन पर नित प्रहार कर
खूब जमाई अपनी शान !
रक्त सुखा अपना जी भरले,
लू ! तू भी अब मन की करले !

मलयानिल तो बहता रहता
कवि के ही मधुमय उपवन में,
हम ग़रीब अति दीन जनों की
मधुशाला तो उष्ण पवन में,
हे मधु बाला ! तू मन हरले,
लू ! तू भी अब मन की करले !

क्या तू है कवि के स्वप्नों की
प्रेम-विह्वला हाय उसास !
विरहानल से तप्त हृदय की,
व्याकुल, रहसमयी, उच्छ्वास !
असह वेदना दे दिल भरले,
लू ! तू भी अब मन की करले !

हम दुर्बल, निर्धन कृषकों को
सभी सताते हृदय खोलकर
शान्ति, प्रेम तो कभी न आते
फूटे मुँह भी कभी बोलकर,
इन प्राणों को भी तू हरले !
लू ! तू भी अब मन की करले !

: १७ :

है कृषकों की कैसी शान !

दिन भर श्रम करते रहते हैं,
सब ऋतुओं में दुख सहते हैं,
विविध भांति के अन्न उगाकर,
जग का सदा पेट भरते हैं,
किन्तु स्वयं भूखे ही मरते,
छोड़ सभी आदर सम्मान !
है कृषकों की कैसी शान !

रुधिर सुखाकर मिहनत करते,
वर्षा, शीत, धूप सब सहते,
नहीं सताया कभी किसी को,
फिर भी सदा पुलिस से डरते,
क्या इससे भी अधिक किसी को,
हो सकता गौरव, अभिमान !
है कृषकों की कैसी शान !

अनपढ़ हैं, असभ्य कहलाते,
सभी लोग निज रौब जमाते,
पशु से भी दयनीय दशा में,
किसी तरह दुःख-दिवस बिताते,
रूखी ही रोटी मिल जाना,
अपना है सौभाग्य महान् !
है कृषकों की कैसी शान !

ईश्वर की प्रतिदिन सुधि करते,
कष्ट किन्तु जाते हैं बढ़ते,
अन्यायों की करुण कहानी,
नहीं किसीसे वह कह सकते,
भारतमाँ यह दशा देखकर,
गाती है दुख ही के गान !
है कृषकों की कैसी शान !

: १८ :

कितनी मीठी रूखी रोटी !

दुखी ! नहीं !
हम दुखी नहीं हैं !
सुखी ! नहीं !
हम सुखी नहीं हैं !
हम सुख दुख से परे हुये हैं,
खा-खाकर यह सूखी रोटी !
कितनी मीठी रूखी रोटी !

क्षुधा सताती है जब हमको,
सुख-दुःख सभी भूल जाते हैं,
रूखी सूखी ही रोटी को,
बड़े स्वाद से हम खाते हैं !
रूखी–सूखी छोटी–मोटी,
ओ ! कितनी मीठी यह रोटी !

धनिक पुरुष जाने क्या भाई,
इस रूखी रोटी का स्वाद !
इस रूखेपन के सम्मुख तो,
फीका हुआ अमृत-अह्लाद !
रहे खरी, पर क्या वह खोटी ?
है ! कितनी मीठी यह रोटी ?

: १९ :

आज हमारी वर्षगाँठ है !
भेंट मुझे देंगे कुछ मित्र ?
ह ! ह ! ह ! कवि ! जानो क्या तुम,
हम कृषकों की शान विचित्र !

भोजन, कपड़े पास नहीं हैं,
पर लगान देना बाक़ी,
आया कुर्क अमीन यहीं है,
उससे जान बचा "साक़ी"

माल बेचकर कर्ज चुकाना,
कवि ! भूखे रहकर संध्या तक
किसी तरह दिन आज बिताना,
कर मिहनत खेतों में भरसक,
यही हमारा ठाट बाट है,
आज हमारी वर्षगाँठ है !

: २० :

गर्म धूल में पैर झुलसते !

काका ! तुमनें सुबह कहा था ,
"जूते आज मँगाकर दूँगा,"
अगर न आये इसी शाम तक,
तो फिर उनको कभी न लूँगा !
कब तक घूमूँ हँसते हँसते,
गर्म धूल में पैर झुलसते !

वर्षा की मिट्टी कीचड़ में
जाड़ों में ठण्डी पृथ्वी पर
अब गर्मी की जलती रज में,
कैसे चलता रहूँ धमक कर,
गाय चरा लाऊँ किस रस्ते,
गर्म धूल में पैर झुलसते !

काका ! तनपर वस्त्र नहीं है,
बड़े वेग से लू चलती है,
सूरज की किरणों के तप से
व्याकुल हुई धरा जलती है,
बाहर कैसे फिरूँ हुलसते,
गर्म धूल में पैर झुलसते !

: २१ :

हम काले हैं तो रहने दो !

कड़ी धूप में वस्त्रहीन ही,
कठिन परिश्रम करते रहते,
तिसपर भी हम सभी तरह के,
कष्ट क्लेश निशदिन ही सहते,
फिर भी क्या गोरे ही होंगे ?
जो असभ्य कहते, कहने दो,
हम काले हैं तो रहने दो !

हम तो निर्धन हैं जमीन पर
धूल धूसरित सो रहते हैं,
सोप, क्रीम या इत्र नहीं कुछ,
अति गँवार इससे कहते हैं,
यह अभिमान धनी लोगों का !
उनको निज मद में बहनें दो,
हम काले हैं तो रहने दो !

धनी जनो ! निज काम करो तुम,
व्यर्थ समय मत नष्ट करो तुम,
हमको तो रहने दो दुखिया,
धन लेकर निज धाम भरो तुम,
गौर वदन तो तुम्हें सुहाता,
हमें शान्ति से दुःख सहने दो,
हम काले हैं, तो रहने दो !

: २२ :

बन्धु ! आज मिल खेलें होली;

दुःख भूलकर, ऐक्य जगाकर,
द्वेष, क्रोध, मद, लोभ भगाकर,
अमल प्रेम का नाता जोड़ें,
बोल सभी से मीठी बोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

चलो चलें खेतों के अन्दर,
जौ, गेहूँ लगते अति सुन्दर,
पौदों से भी प्रीति करेंगे,
बिखरा कर उनपर यह रोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली।

पशु तो हैं साथी निशिदिन के,
हम चिर ऋणी रहेंगे जिनके,
उनके पास चलें सब मिलकर,
गाय खड़ी है कैसी भोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

भारत मां ! हम तुझे न भूलें,
तेरी ही गोदी में झूलें,
चाहे कैसे कष्ट सतावें,
सदा रहे हिल मिल यह टोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

: २३ :

मत छूना, हम तो अछूत हैं !

हमको छूकर आप व्यर्थ ही
गंग नहाने जायेंगे,
विप्र ! कदाचित स्वर्गलोक में,
आप न घुसने पायेंगे।
धर्म आपका भ्रष्ट कराने—
में हमको क्या मिलता है,
हमको तो यमदूत नरक ही
ले जाने को आवेंगे।

भारत मां के हम कपूत हैं,
मत छूना हम तो अछूत हैं !

हमसे तो पशु भी हैं अच्छे,
उनको छूना पाप नहीं,
लो पुचकार श्वान को चाहे,
भूल न छूना हमें कहीं,
निर्धन हैं पवित्र कैसे हों,
नहीं मिलेगी मुक्ति हमें,
स्वर्णकुटी में आप विचरना,
हमें छोड़दो विप्र यहीं !

क्या हो सकते हम सपूत हैं ?
दूर रहो, हम तो अछूत हैं !

: २४ :

कलाकार ! सौन्दर्य कहाँ है ?

रेशम के रंजित चमकीले,
वसनों की बहुवर्ण घटा में ?
हीरक, मोती, जड़ित कान्तिमय
आभरणों की अमल छटा में ?

इस साधारण खादी में भी
है अनुपम सौन्दर्य झलकता,
इसके भी धागों में, कविवर,
है उन्मद आनन्द छलकता ?

कलाकार ! कहते हो रोटी
में सौन्दर्य नहीं कुछ मिलता !
मेरा जीवन–पुष्प सदा, कवि
रूखी ही रोटी से खिलता !

: २५ :

क्या भूखे हो मेरे लाल ?

रोते हो इस बेचैनी से
पड़े पड़े क्यों तुम मिट्टी में,
कपड़े सब मैले होते हैं,
लिसे धूल में सुन्दर बाल,
क्या भूखे हो मेरे लाल ?

आँखों से आँसू की धारा,
निकल निकल पृथ्वी पर गिरती,
उठो ! उठो ! मत रोओ प्यारे
है क्या हुआ तुम्हारा हाल ?
क्या भूखे हो मेरे लाल ?

आते ही होंगे अब दादा,
लेकर कुछ पैसे निज श्रम के,
लाऊँगी कुछ चने शीघ्र ही
खाना फिर तुम रोटी दाल,
भूखे ही हो मेरे लाल !

किन कर्मों के कारण, ईश्वर
सदा सताते इन दीनों को !
कब तक यह दारुण दुख सहना,
बीत रहे सालों पर साल !
हाय करूँ क्या मेरे लाल ?

शीतल पवन वेग से बहता
सन्ध्या हुई अन्धेरा छाया
वे क्यों आये नहीं अभी तक
कहाँ रहे मेरे प्रतिपाल ?
उठो, प्राणप्रिय मेरे लाल !

: २६ :

चाह नहीं मुझको सुनने की,
मोहन की बंसी की तान,
क्या होगा उसको सुन सुनकर;
भूखे भक्ति नहीं भगवान !

अनहद नाद सुनूँ मैं क्यों प्रिय,
होगी व्यर्थ चित्त में भ्रान्ति,
मुझको तो रोटी के स्वर में,
मिलती है असीम चिर शान्ति !

इच्छा नहीं मुझे सुनने की,
दुख-वीणा का करुण विहाग
आओ मिलकर नित्य अलापें,
अति पुनीत रोटी का राग !

रोटी की रटना लगी, भूख उठी है जाग,
आठ पहर, चौसठ घड़ी, यही हमारा राग !

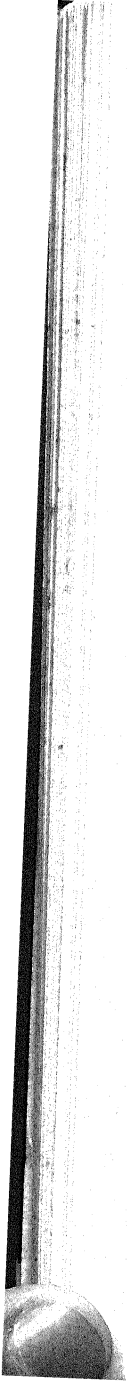

भारत-गान

: २७ :

होगा कब स्वातन्त्र्य प्रभात ?
विकसित होगा कब स्वराज्य का
गौरवपूर्ण, विमल जलजात ?

कब बीतेगी अन्धकारमय,
पारतन्त्र्य की काली रजनी,
मुक्त सूर्य का नव-प्रकाश कब,
फैलेगा भारत में तात ?

जिस दिन होगा प्रेम परस्पर,
भूल सभी जातीय विभेद,
हिन्दू, मुस्लिम, विप्र, हरीजन,
मेंटेंगे जीवन विच्छेद
धनी पुरुष जिस दिन कृषकों से
गले मिलेंगे त्याग गुमान,
उनकी ही निश्चल सेवा में,
समझेंगे वे अपनी शान,

उसी दिवस सूखेगा मां के
व्यथित हृदय का अश्रु-प्रपात,
मलिन पुष्प भी सुरभित होंगे,
होगा शुचि स्वातंत्र्य-प्रभात ।

: २८ :

उठो, उठो, भारत के लाल !

भारत माता खड़ी पुकारे,
सोते ही रह जाओगे ?
अधःपतन की धारा में क्या,
डूब डूब बह जाओगे ?

कहाँ गया भारत का गौरव,
कहां गया धन, मान सभी ?
क्या प्राचीन कीर्ति से उज्ज्वल;
होगा हिन्दुस्तान कभी ?

शोचनीय माता का हाल !
उठो ! उठो ! भारत के लाल !

त्रेपन

विद्या, कला, ज्ञान, गौरव से,
पूर्ण रहा था भारतवर्ष,
यह दयनीय अधोगति उसकी !
क्या फिर होगा वह उत्कर्ष ?

भूखी है परतंत्र हुई है,
नहीं रहा मुख पर सौन्दर्य,
तनपर अच्छे वस्त्र नहीं हैं,
लोप हुआ सारा ऐश्वर्य !

दुःखपूर्ण माता का हाल;
उठो ! उठो ! भारत के लाल !

: २९ :

आओ गावें भारत गान !

जातिपांति का भेद भूलकर
सब मिलकर बस एक राग ही
नित्य अलापें हृदय खोल कर
"हो कैसे आज़ाद हमारी,
प्यारी जननी, भारत माता !"

पराधीन रहकर भी क्योंकर
हो सकता गौरव अभिमान !
आओ, गावें भारत गान !

जब तक हम आज़ाद नहीं हैं,
तब तक तो अस्पृश्य सभी हैं,
भेद भाव को फिर भी रखने
में हो सकती कोई शान !
आओ गावें भारत गान !

आपस में लड़ लड़कर हरदम,
सब कुछ ही हम खो बैठे हैं,
निज भाई को पशुओं से भी,
बदतर मान, हमारा जीवन
बिल्कुल सड़कर नष्ट हुआ है,

एक बार फिर हिलमिल हमको
मिल सकता आज़ादी-दान !
आओ ! गावें भारत गान !

: ३० :

जागो मेरी भारत माता !
नव प्रकाश चारों दिश फैला,
सोना अब न सुहाता !

सभी देश उठ खड़े हुए हैं,
स्वागत में नवयुग के।
नये नये पथ से सब कोई,
शान्ति खोजने जाता।

अब भी तुम आलस में क्यों माँ,
पड़ी पड़ी सोती हो।
जननि ! तुम्हारी घोर नींद से,
चिन्तित हुआ विधाता।

बिना तुम्हारी वत्सलता के,
राष्ट्र परस्पर लड़ते।
उठकर शान्ति सुखद फैलाओ,
जोड़ प्रेम का नाता।

: ३१ :

हमको तो स्वातंत्र्य चाहिए !

योग्य नहीं शायद हम अब भी,
सफल न होंगे निज शासन में—
इसकी किन्तु फिक्र क्या तुमको ?
हम पसन्द करते मरना भी,
पर इन अपने ही हाथों से !
धन्यवाद ! अब आप जाइये,
हमको तो स्वातंत्र्य चाहिये !

करली खूब हमारी 'सेवा',
हम 'काले' अब सभ्य बनें हैं,
कृपा करो बस छोड़ो, छोड़ो,
गिरते तो गिरनें दो हमको,
आज़ादी से तो गिर लेंगे !
तम में पथ अब मत दिखाइये,
हमको तो स्वातंत्र्य चाहिये !

मिल जावें मिट्टी में चाहे,
मिट जावें चाहे पृथ्वी से,
किन्तु चाहते आज़ादी हम,
जीने, मरने, दोनों ही की,
सहे बहुत उपदेश आपके
अधिक नीति अब मत सिखाइये,
हमको तो स्वातंत्र्य चाहिये !

: ३२ :

स्वागत ! स्वागत ! भगिनि भ्रातवर !
भारतमाता जननि हमारी,
धन्य मिले हम आज परस्पर !

अन्त हुई अब रात्रि अन्धेरी,
ऊषा की हर्षित किरणों ने,
पुलक खिलादीं आशा कलियाँ,—
आशा के इस प्रेम-पुष्प को,
आओ अर्पित करें जननि पर !
स्वागत ! स्वागत ! भगिनि, भ्रातवर !

यात्री हैं हम स्वराज्य पथ के,
स्वतंत्रता ही तीर्थ हमारा,
सेवा का व्रत लिया सभी ने,
सत्य, अहिंसा की साक्षी कर,
धन्य मिले जो आज परस्पर !
स्वागत ! स्वागत ! भगिनि, भ्रातवर !

फुटकर

: ३३ :

जय ! जय ! जय ! सेगाँव सन्त !

कहता है संसार 'महात्मा,
गाता है गुनगान तुम्हारा,
किन्तु झुका है माथा मेरा,
इसका तो कारण ही न्यारा ।

सत्य अहिंसा के मंदिर में,
रहे सदा हो अटल पुजारी,
दलित, अकिंचन अबल जनों के
चिर सेवक, अनन्य हितकारी ।

निज शरीर को जला जलाकर,
आलोकित करते हो जग को,
सुलभ बनाते त्याग तपस्या
से स्वदेश के दुर्गम पथ को,

कारण नहीं किन्तु यह कोई,
मेरे तव गुण गाने का,
भेद और ही कुछ है, बापू,
अपना राग सुनाने का,

विमल प्रेम–जल से तुमने नित,
मनुज हृदय को सींचा है,
सन्त, तुम्हारी मानवता ने
ही मुझको तो खींचा है।

रहो 'महात्मा' तुम सब जग के,
जग से कभी न हारूंगा,
मैं तो 'बापूजी' कहकर ही
तुमको नित्य पुकारूँगा ।

: ३४ :

जीवन का यह अनुपम बाग !
अश्रु-हास आलोक-तिमिर का,
कैसा सुन्दर राग !

फैला है सुरभित पुष्पों का,
सुखद प्रेममय गान,
पतित पंखड़ी भरती साँसें,
करती जीवन–त्याग,

एक ओर पुलकित पिक गावे,
मत्त भ्रमर गुँजार,
ओर दूसरी आकुल क्रन्दन,
करता पीड़ित काग ?

: ३५ :

प्रात काल से बैठा हूँ मैं,
इस सरिता के कूल,
आये नहीं किन्तु तुम अब तक,
नाथ गये क्या भूल ?
अम्बर होता मेघाच्छादित,
शीत अनिल है बहता,
चपला केलि भयंकर करती,
आघातें नभ सहता।
नाथ ! बिलम्ब हुआ बहुतेरा,
अन्धकार अति छाया,
किन्तु तुम्हारे मृदु चरणों का,
शब्द नहीं सुन पाया !

: ३६ :

सागर लहरी तू झरझर,
इस पथरीले तटपर ।

सन्ध्या की अवसान–शान्ति में,
अंबर की तम–युक्त कान्ति में,
सागर–लहरी तू झरझर,
इस पथरीले तटपर ।

मेरी तो आशाएँ अगिनित,
बिखर चुकीं इस जीवन तटपर,
तू भी सागर ! क्रीड़ा करले,
गिरने दे हिलोर निज जी भर,
सागर लहरी तू झरझर,
इस पथरीले तटपर ।

गर्व न कर कोटिक लहरों पर !
इस छोटे से मानस में भी,
है असंख्य लहरों का गुंजन—
लहरी बिन अन्त निराशा की—
सागर लहरी तू झरझर,
इस पथरीले तटपर !

: ३७ :

उषा काल के प्रमुदित गान !
शुचि, सुरभित, सुरम्य प्राची में,
फैली नीरव तान ।

कोकिल की कलकल कूजन में,
मलयानिल के मृदु चुम्बन में,
कोमल कलियों की किलकन में,
गुंजित जीवन प्राण ।

यौवन का मद-केलि शान्त कर,
कनक रश्मियों में तुषार भर,
उषा की मधुमय हिलोर पर,
छावे क्यों अवसान ?

: ३८ :

अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झर झर झरती सागर लहरी।

क्या यह हैं सुखपूर्ण उमंगें ?
सागर की उन्मत्त तरंगें ?
या हैं यह आतपमय स्वासें,
आहें निधि के व्यथित हृदय की,
अश्रु-हासमय क्रीड़ा करती,
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झर झर झरती सागर लहरी,

होंगी हर्षित हृदय तरंगें,
निज प्रेयसि प्रति प्रेम उमंगें,
आह पूर्ण प्रेमी की क्रीड़ा,
आओ देखो सागर तटपर,
जग को प्रेम-गान से भरती,
अविरल, निर्मल, चंचल प्रतिपल,
झर झर झरती सागर लहरी।

: ३९ :

आँसू की मेरी प्रिय माला !
जीवन को दुख से भर मैंने,
इसे गले में डाला ।

करुण निराशा में नित धोकर,
कष्टों के जल को इसमें भर,
रो-रोकर दुति अति उज्ज्वल कर,
मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला ।

रक्त–लसित अपने हाथों से,
जीवन के बिखरे तारों से,
पोकर पापों के काँटों से,
मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला ।

जीवन के दुखमय उपवन में,
शान्ति खोज हित बहुत फिरा मैं,
पाकर सुख को भी दुख ही में,
मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला।

: ४० :

क्यों गाऊँ ईश्वर की महिमा ?

अथाह दुख से मानव जीवन,
जिसने भरा न जाने क्यों कर,
गा गा कर उन ही का गौरव,
समय बिताऊँ क्यों मेरी माँ ?

दुख है पिछले कर्मों का फल ?
जो परमेश्वर स्मृति लेकर,
व्यथित करे निर्बल जीवों को,
अपना जीवन क्यों न बिताऊँ,
धोकर उनकी मलिन कालिमा ?

जिनके जग के सब जीव जन्तु,
दया हीन हो प्राण अन्य के,
लेते निज जीवन हितु ही को,
उन्हीं विधाता की कर पूजा,
अपना जीवन क्यों खोऊँ माँ ?

डरना क्या दैवी प्रकोप से ?
कम है क्या स्थित करुण व्यथा ?
निर्भय हो काटूंगा जीवन,
गाकर अमल प्रेम की महिमा,
मनुज–प्रीति की पावन सुषमा !

अथाह दुख से मानव जीवन
जिसने भरा न जाने क्यों कर,
गा गा कर उस ही का गौरव,
समय बिताऊँ क्यों मेरी माँ ?

: ४१ :

दुख–सागर के निर्गम तट पर,
भाई ! आओ गावें गीत !

जीवन के कांटों पर कब तक,
अश्रु बहावें, हृदय वेध कर ?
दिन दिन क्यों निज रक्त वहावें,
गिर गिर इस पथरीले तटपर,

करुण व्यथा के कम्पित स्वर में
क्यों न मिलावें प्रेम–सँगीत ?
दुःख सागर के निर्गम तट पर,
भाई ! आओ गावें गीत।

: ४२ :

दुख–आगर में,
असह व्यथा के सागर में,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

जन्म दिया जब तुमने,
हर्ष मनाया सबने,
जाना नहीं किसी ने लेकिन,
मेरे दुख का भार,
जीवन की कंटकमय निधि की,
व्यथा, अथाह, अपार ।
दुख–आगर में,
असह व्यथा के सागर में,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

किया था ईश्वर में विश्वास,
सही सब आह-भरी निश्वास,
शान्तिपूर्ण सुख की आशा में,
त्यागा निति मानव–संसार।
माँ ! हुई किन्तु मेरी तो सारी,
आशाएँ निष्फल, निस्सार !
दुख–आगर में,
अथह व्यथा के सागर में,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ !

यह दुखपूर्ण व्यथा के शूल,
सुना था होंगे सुखमय फूल,
अति बलवान विधाता मां क्या,
भूल गया मेरे ही दुख को ?
मां ! आओ सुखपूर्ण बनाओ,
आतपमय मेरे जीवन को,
दुख–आगर में,
अथह व्यथा के सागर में,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

: ४३ :

सन्ध्या का शान्त, अश्रुमय हास !

प्राची की निर्मल लाली पर
सघन कालिमा छाई,
पश्चिम के अवसान-तिमिर में,
चिर सुख का आभास !

यौवन के अविरल उपवन में,
अनिल सुवासित बहता,
आच्छादित अब शान्ति अन्त की,
पावन, नीरव, भास !

जीवन की मधुरम वीणा का,
है अति मधुर अलाप,
गुंजित किन्तु मृत्यु-तंत्री में,
अनुपम, मृदु, उल्लास !

सस्ता-साहित्य-मण्डल के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दो भाग) १।)
३—तामिलवेद ॥।)
४—शैतान की लकड़ी तर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जन्त : अप्राप्य) ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।=)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।=)
१३—चीन की आवाज (अप्राप्य)।—)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ॥)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।—)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग (अप्राप्य) ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यवहारिक सभ्यता ॥)
२२—अंधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।—)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (जन्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥—)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—ज़िन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी)
(दो खण्ड सजिल्द) १॥)
४४—जब अंग्रज़ आये (ज़ब्त)
(अप्राप्य) १।=)
४५—जीवन-विकास (अजिल्द) १।)
(सजिल्द) १॥)
४६—किसानों का बिगुल (ज़ब्त) =)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा गीता-
बोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥) सजिल्द २)
५२—स्वगत ।=)
५३—युग-धर्म (ज़ब्तःअप्राप्य) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
५५—विदेशी कपड़े का
मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद् ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥)
६६—एशिया की क्रांति (ज़ब्त) १॥)
६७—हमारे राष्ट्रनिर्माता २॥)
६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)
७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी ४)
७४—विश्व-इतिहास की झलक ८)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली ।